Scholarly Research Journal for Humanity Science & English Language,
Online ISSN 2348-3083, SJ IMPACT FACTOR 2021: 7.278, www.srjis.com
PEER REVIEWED & REFEREED JOURNAL, JUNE-JULY, 2022, VOL-10/52

उपनिशदीय शिक्षा के_पारमार्थिक उद्देश्य का वैषिश्ट्य

डॉ विन्दुमती द्विवेदी

सहायक आचार्य,शिक्षाशास्त्र विभाग उत्तराखण्ड संस्कृत विश्वविद्यालय,हरिद्वार

Paper Received On: 20 JULY 2022
Peer Reviewed On: 31 JULY 2022
Published On: 1 AUGUST 2022

Abstract

शिक्षा एक सोद्देश्य प्रक्रिया है। प्रत्येक कार्य का कोई न कोई प्रयोजन अवश्य होता है। प्रयोजन ही कार्य सम्पादित करने वाले के लिए प्रेरणा एवं प्रोत्साहन का स्रोत होता है। जब लक्ष्य सामने दिखायी पड़ रहा होता है तो व्यक्ति पूर्ण मनोयोग एवं उत्साह के साथ कार्य सम्पन्न करता है। बिना उद्देश्य निर्धारण के जीवन के किसी भी क्षेत्र में सफलता नहीं मिल सकती। जब व्यक्ति को किसी उद्देश्य का स्पष्ट ज्ञान होता है तो उसके मन में दृढ़ता एवं आत्मबल जाग्रत हो जाता है और वह एकाग्र होकर अपने कार्य को पूरे उत्साह के साथ सम्पन्न करता है। अतः उद्देश्य वह पूर्वदर्शित लक्ष्य है जिसे प्राप्त करने के लिए व्यक्ति प्रसन्नतापूर्वक, उत्साह के साथ चिन्तनशील रहते हुए क्रियाशील होता है। पूर्वदर्शित लक्ष्य ही किसी क्रिया को संचालित करता है अथवा व्यवहार को प्रेरित करता है।

Scholarly Research Journal's* is licensed Based on a work at *www.srjis.com

प्रस्तावना – शिक्षा एक आजीवन चलने वाली प्रक्रिया है। अतः शिक्षा के वे ही उद्देश्य होते है जो जीवन के होते है। *"व्यापक अर्थ में तो जीवन ही शिक्षा है और शिक्षा ही जीवन है।"*[1] प्राकृतिक बालक और विकसित समाज के बीच एक गहरी खाई होती है। इस खाई को पाटने के लिए केवल शिक्षा ही एकमात्र साधन है। समाज की बदलती हुई आवश्यकताओं तथा आदर्शों को ध्यान में रखते हुए, शिक्षा

[1] *"Life is Education and Education is life."* - John Locke

Copyright © 2022, Scholarly Research Journal for Humanity Science & English Language

बालक का इस प्रकार विकास करती है कि वह स्वयं के लिए एवं समाज के लिए योग्यतम सिद्ध हो सके। शिक्षा समाज का दर्पण है। समाज की उन्नति एवं अवनति शिक्षा पर ही निर्भर होता है। जिस समाज में जिस प्रकार की शिक्षा व्यवस्था होती है, वह समाज वैसा ही बन जाता है। मानव के जीवनोद्देश्यों की प्राप्ति में शिक्षा एक महत्त्वपूर्ण साधन है अतः दोनों के उद्देश्य समान हैं। इनमें से कुछ उद्देश्य तो सनातन, निश्चित तथा अपरिवर्तनशील हैं और कुछ लचीले एवं परिवर्तनशील। समाज के परिवर्तिक स्वरूप के अनुसार ही भिन्न-भिन्न देशकाल एवं परिस्थिति में शिक्षा के उद्देश्यों में भी भिन्नता आती रहती है।शिक्षा किसी समाज के विकास की मूलाधार होती है। जीवन के उद्देश्य, रहन-सहन, सामाजिक मर्यादाओं, परम्पराओं एवं आदर्शों का निर्माण शिक्षा द्वारा ही होता है। समाज में रहने वाले लोग इसी शिक्षा पद्धति में ढलकर, आगे आने वाली पीढ़ी के लिए कुछ सन्देश छोड़ जाते हैं। *''भारतीय शिक्षा का उद्देश्य सदैव से ही लौकिक अभ्युदय की प्राप्ति के साथ-साथ मोक्ष की अभीप्सा रही है।''*[२] धर्माचरण के परिणाम को दृष्टि में रखकर महर्षि कणाद ने कहा है कि जिससे लौकिक अभ्युदय तथा पारलौकिक उन्नति की सिद्धि होती है वही धर्म है।[३]प्रत्येक समाज की शिक्षा प्रणाली का अपना एक वैशिष्ट्य होता है। इस विशेषता के कारण ही एक काल की शिक्षा व्यवस्था दूसरे काल की शिक्षा व्यवस्था से भिन्न होती है। इसी प्रकार एक स्थान एवं समाज की शिक्षा व्यवस्था दूसरे स्थान एवं समाज की शिक्षा प्रक्रिया से भिन्न होती है। संसार के सर्वप्रथम ग्रन्थ वेदों की रचना हमारी भारतीय मनीषा का ज्वलन्त प्रमाण है। वेद उस समय के ज्ञान के कोश हैं। इसमें उस समय तक आर्यों द्वारा खोजा गया समस्त भौतिक एवं आध्यात्मिक ज्ञान सूत्र रूप में संगृहीत हैं। उच्च सभ्यता एवं संस्कृति का विकास वेदों की रचना के साथ ही प्रारम्भ हुआ और तभी से शुरू हुआ शिक्षा का इतिहास। ज्ञान की सर्वप्रथम किरण भारत में ही प्रस्फुटित हुई थी यह बात सभी स्वीकार करते हैं। अंग्रेज विद्वान् एफ०डब्ल्यू० थॉमस के शब्दों में - *''ऐसा कोई देश नहीं है जहाँ ज्ञान के प्रति प्रेम इतने प्राचीन समय में प्रारम्भ हुआ हो जितना भारत में या जिसने इतना स्थायी और शक्तिशाली प्रभाव उत्पन्न किया हो जितना भारत ने।''*[४]भारत में २५०० ई०पू० से ५०० ई०पू० तक

---

[2] *''अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतम नुते।''* – ई ाावास्यो0 – 11

[3] *''यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः''* – महर्शि कणाद वै ोशिक सूत्र

[4] *''There has been no country where the love of learning had so early an origin or*

वेदों का वर्चस्व रहा। इतिहासकार इस काल को वैदिक काल कहते हैं। वैदिक काल में हमारे देश में एक समृद्ध शिक्षा-प्रणाली का विकास हुआ। शिक्षा की दृष्टि से इसे दो उपकालों में विभाजित किया जाता है - पूर्व वैदिक काल एवं उत्तर वैदिक काल। सम्पूर्ण वैदिक कालीन शिक्षा प्रणाली में मूलभूत समानता होते हुए भी ज्ञान के विकास के साथ-साथ इसकी पाठ्यचर्या एवं शिक्षण विधियों में परिवर्तन हुआ।वेदों के अन्तिम एवं वास्तविक उद्देश्य को दार्शनिकों ने उपनिषदों में देखा। इसीलिए उपनिषदें वेदान्त के रूप में प्रसिद्ध हुईं।[५] वस्तुतः उपनिषदें वेदों के ही ज्ञानकाण्ड हैं। वेदों में प्राकृतिक शक्तियों की विभिन्न प्रकार की उपासना है। किन्तु उपनिषद् ग्रन्थों में प्रकृति में सन्निहित शक्तियों के पीछे की आध्यात्मिक शक्ति की खोज है। जिन दार्शनिक विचारों एवं ज्ञान की खोज का ऋग्वेद में उदय हुआ उन विचारों ने उपनिषदों में प्रौढ़ता प्राप्त की। ज्ञान की खोज ही उपनिषद् साहित्य का उद्देश्य बना।

उपनिशदीय षिक्षा के उद्देष्य :-वेद विद्या के ज्ञानकुण्ड होने के कारण उपनिषदें ज्ञान की खान के रूप में प्रसिद्ध हैं। इस काल तक विभिन्न दार्शनिक चिन्तन का प्रसार हो चुका था। जीवन के विभिन्न उद्देश्यों का निर्धारण हुआ और उपनिषद्कालीन साधक या जिज्ञासु जीवन के लिए निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति में ही व्यस्त दिखायी पड़ता है। ये उद्देश्य थे - अमरत्व की प्राप्ति, परम ज्ञानोपलब्धि अर्थात् सत्य का साक्षात्कार और आत्मानुभूति। इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए विभिन्न संस्थाओं द्वारा चतुर्दिक प्रयास किये जा रहे थे। विभिन्न संस्थाएँ जैसे समाज, परिवार, शिक्षण संस्थाएँ, राजा के दरबार आदि इस कार्य में सहयोग प्रदान करते थे। अन्य सभी संस्थाएँ अपनी समस्याओं के निराकरण के लिए शिक्षण संस्थाओं से सहयोग लेते थे, क्योंकि शिक्षा संस्थाओं में योग्य आचार्यगण के निर्देशन में एक ज्ञानात्मक वातावरण का निर्माण होता था। अपने अन्तेवासी शिष्यों को शिक्षा प्रदान करते हुए, ये आचार्यगण जिन शैक्षिक प्रविधि को अपनाते थे उसके अनेक उद्देश्य थे। ये उद्देश्य जीवन के महत्त्वपूर्ण उद्देश्य थे।

मानवजीवन के समस्त उद्देश्यों की प्राप्ति ही शिक्षा के उद्देश्य हैं। उपनिषदें दो प्रकार की विद्या का प्रतिपादन करती हैं - परा विद्या और अपरा विद्या/परा विद्या पारमार्थिक उद्देश्य की सिद्धि करने वाली और अपरा विद्या लौकिक जीवन से सम्बन्धित।[६] जीवन का व्यावहारिक पक्ष और आध्यात्मिक

---

has exercised so lasting and powerful influence." - F.W. Thomas

[5] *"वेदान्तो नामोपनिशत्प्रमाणम् तदुपकारीणि भारीरक सूत्रादीनि च"* – वेदान्तसार

[6] *द्वे विद्ये वेदितव्ये इति ह स्म यद्ब्रह्मविदो वदन्ति परा चैवापरा च। तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः*

पक्ष समान रूप से महत्त्वपूर्ण होता है। लौकिक या व्यावहारिक पक्ष दूसरे पक्ष के परम उद्देश्य की प्राप्ति में सहायक होता है। भौतिक रूप से समृद्ध एवं शारीरिक रूप से स्वस्थ सुदृढ़ व्यक्ति ही परमार्थ के पथ पर आगे बढ़ सकता है। इसीलिए उपनिषदें इन दोनों की ही प्राप्ति का समर्थन करती हैं। ईशावास्योपनिषद् प्रतिपादित करती है कि *'कर्म एवं ज्ञान'* दोनों ही समान रूप से महत्त्वपूर्ण हैं। इनमें से केवल एक की उपासना करने वाले अज्ञानी जन होते हैं।[७] *''जो विद्या एवं अविद्या ज्ञान (परमार्थ) एवं कर्म (व्यवहार) को एक साथ जानता है, वह अविद्या से मृत्यु अर्थात् सांसारिक दुःखों को पार करके विद्या (ज्ञान) से अमरत्त्व प्राप्त कर लेता है।''*[८] भारतीय शिक्षा का उद्देश्य लौकिक अभ्युदय की प्राप्ति के साथ ही निःश्रेयस् अर्थात् मोक्ष की अभीप्सा रही है। शिक्षा मानव का सर्वांगीण विकास करते हुए उसे अन्ततः मोक्ष के लिए तैयार करती है। उपनिषदों में मानव के सहज जीवन दर्शन को प्रत्यक्ष किया गया है। इनकी अक्षय अर्थवत्ता एवं आत्मिक शक्ति से मानवमात्र को अन्तर्दृष्टि एवं प्रेरणा प्राप्त होती है। उपनिषदों की प्रतीकात्मक शिक्षा व्यक्ति को उस सत्य का साक्षात्कार कराती है जिसका वह सृष्टि के आदिकाल से ही अन्वेषण करता आया है। इस प्रकार औपनिषद् शिक्षा के उद्देश्यों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है -

१. पारमार्थिक उद्देश्य

२. लौकिक उद्देश्य

<u>पारमार्थिक उद्देष्य की विवेचना - (आध्यात्मिक विकास)</u> :-उपनिषद्काल में प्रत्येक व्यक्ति के जीवन का मुख्य उद्देश्य आत्मज्ञान की प्राप्ति या आत्मोपलब्धि ही था। शिक्षा की सम्पूर्ण प्रक्रिया पूर्ण आत्मज्ञान के उद्देश्य से ही संचालित थी। आध्यात्मिक विकास कर साधक को इस योग्य बनाना शिक्षा का मुख्य कार्य था कि वह जीवन संघर्षों से मुक्ति प्राप्त कर सके। गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने अध्यात्म विद्या को अन्य समस्त विद्याओं से श्रेष्ठ बतलाते हुए कहा है कि - *''मैं विद्यायों में अध्यात्म विद्या हूँ।''*[९] वही शिक्षा वास्तविक शिक्षा थी जो व्यक्ति को असत्य से सत्य की ओर, अन्धकार से प्रकाश की ओर

सामवेदोऽथर्ववेदः ि ाक्षा – कल्पो व्याकरणं निरूक्तं छन्दो ज्योतिशामिति। अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते। – मुण्डको0 1–1–4, 5

[7] *अन्धन्तमः प्रवि ाान्ति ये अविद्यामुपासते।*
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायां रताः।। – ई ाावास्योप0 9

[8] *विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह।*
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतम ुते।। – तदैव – 11

[9] *'अध्यात्मविद्या विद्यानां'* – गीता – 10–32

एवं मृत्यु से अमरत्त्व की ओर ले जाये।[10]भौतिक समृद्धि के प्रति तीव्र आकांक्षा के परिणाम से अवगत होकर मानव उपनिषदों के प्रतिपाद्य ज्ञानकाण्ड की ओर अग्रसर हुआ। औपनिषद् ज्ञान को उच्च ज्ञान और निम्नज्ञान के रूप में परा एवं अपरा विद्या के नाम से जाना गया। वेद वेदांग आदि के रूप में अपरा विद्या, उच्च ज्ञान अर्थात् *'पराविद्या'* की प्राप्ति में सहायक था। कठोपनिषद् में इसे ही श्रेय और प्रेय के नाम से अभिव्यक्त किया गया है।[11]उपनिषदों में इस परम ज्ञान को ब्रह्मज्ञान या आत्मज्ञान के नाम से व्यक्त किया गया है। सभी विद्याओं में आत्मज्ञान को सर्वश्रेष्ठ बताया गया है।[12] इस परम कल्याणकारी विद्या को ग्रहण करने के लिए मनुष्य को कितने त्याग, तप, सेवा, सत्य और विनय की आवश्यकता होती है। यह बात विभिन्न आख्यायिकाओं के माध्यम से प्रदर्शित किया गया है। छान्दोग्योपनिषद् में वर्णन है कि सत्यकाम जाबाल ने अपने गुरू हारिद्रुमत गौतम से शिक्षा प्रदान करने की प्रार्थना की तो गुरू ने उपनयन से पूर्व उससे उसका गोत्र पूछा। उसने उस विषय में अपने अज्ञान का कारण स्पष्ट शब्दों में कह दिया। उसके स्पष्ट कथन से ही आचार्य को निश्चय हो गया कि वह ब्राह्मण ही है और उन्होंने उसे ब्रह्मज्ञान का उपदेश दिया। उसने हारिद्रुमत गौतम के पास जाकर कहा - *''मैं पूज्य श्रीमान के यहाँ ब्रह्मचर्यपूर्वक वास करूँगा। इसी से आपकी सन्निधि में आया हूँ।''*[13]गौतम ने कहा हे सोम्य तूँ किस गोत्रवाला है ? उसने कहा भगवन् - *''मुझे अपना गोत्र ज्ञात नहीं है। मैंने माता से पूछा था। उन्होंने मुझे उत्तर दिया कि मैं पहले आगन्तुक अतिथियों की सेवा-टहल करने वाली परिचारिका थी। उन्हीं दिनों युवावस्था में मैंने तुझे प्राप्त किया मैं जबाला नामवाली हूँ और तू सत्यकाम अतः तू सत्यकाम जाबाल है।''*[14]गौतम ने कहा ऐसा स्पष्ट भाषण कोई ब्राह्मणेतर नहीं कर सकता। अतः हे सोम्य तू समिधा ले आ। मै। तेरा उपनयन कर दूंगा क्योंकि तूने सत्य का त्याग नहीं किया।[15]बृहदारण्यक उपनिषद् में याज्ञवल्क्य ने अपनी ब्रह्मवादिनी पत्नी मैत्रेयी को

---

[10] *''असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय*
मृत्योर्माऽमृतं गमय।'' — बृह0उप0 — 1—3—28

[11] *श्रेय च प्रेय च मनुश्यमेतस्तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीरः।*
श्रेयो हि धीरोऽभिप्रेयसो वृणीते प्रेयोमन्दो योग क्षेमाद्वृणीते।। — कठो0 1—2—2

[12] *''सर्वेशामपि चैतेशामात्मज्ञानं परं स्मृतम्''* — मनुस्मृति— 12—85

[13] ''स ह हारिद्रुम गौतममेत्योवाच ब्रह्मचर्यं भगवति वत्स्यामुपेयां भगवन्तमिति।''

[14] *तं होवाच किंगोत्रो नु सोम्यासीति स हो वाच नाहमेतद्वेद। भो यद्गोत्रोऽहमस्म्यपृच्छं मातरं सा मा प्रत्यबीद्बहवहं चरन्ती परिचारिणी यौवने त्वामलभे साहमेतन्न वेद यद्गोत्रस्त्वमसिं जबाला*

ब्रह्मज्ञान का उपदेश दिया है। जब याज्ञवल्क्य अपने गृहस्थ आश्रम से सन्यास की ओर प्रस्थान कर रहे थे तब अपनी पत्नी मैत्रेयी से बोले - अरी मैत्रेयी मैं इस गृहस्थ आश्रम को छोड़कर जाने वाला हूँ इसलिए इस कात्यायनी (अपनी दूसरी पत्नी) के साथ तेरा बंटवारा कर दूँ।मैत्रेयी ने कहा - भगवन्! यदि धन से परिपूर्ण सारी पृथ्वी मेरी हो जाय तो क्या मैं उससे अमर हो सकती हूँ। याज्ञवल्क्य ने कहा नहीं। धन से अमृतत्त्व की आशा नहीं की जा सकती।मैत्रेयी ने कहा जिससे मैं अमर नहीं हो सकतीं उसे लेकर मैं क्या करूँगी/श्रीमान जो कुछ अमृतत्त्व का साधन हो वही मुझे बतायें।[15]याज्ञवल्क्य ने कहा ..... सबके प्रयोजन के लिए सब प्रिय नहीं होते, अपने ही प्रयोजन के लिए सब प्रिय होते हैं। अरी मैत्रेयी - आत्मा ही दर्शनीय, श्रवणीय, माननीय और ध्यान करने योग्य है। आत्मा का दर्शन, श्रवण, मनन और ज्ञान हो जाने पर सबका ज्ञान हो जाता है।[16]इस प्रकार याज्ञवल्क्य ने मैत्रेयी को ब्रह्मविद्या का उपदेश दिया। छान्दोग्योपनिषद् में ऋषि आरूणि ने अपने पुत्र श्वेतकेतु को अनेक दृष्टान्तों के माध्यम से ब्रह्मविद्या का उपदेश दिया। *''हे सोम्य! जिस प्रकार मृत्तिका के एक पिण्ड के द्वारा समस्त मृन्मय पदार्थों का ज्ञान हो जाता है कि विकार तो केवल वाणी के आश्रयभूत नाममात्र हैं, सत्य तो केवल मृत्तिका (मिट्टी) ही है वैसे ही एकमात्र ब्रह्म ही सत्य है उस सत्य का ज्ञान प्राप्त हो जाने पर समस्त ज्ञान प्राप्त हो जाता है।''*[17]केवल ब्राह्मण ही नहीं बल्कि क्षत्रिय राजा जैसे - विदेहराज जनक, अश्वपति कैकेय, अजातशत्रु (काशी के राजा) प्रवाहण जाबाल, पांचाल नरेश आदि भी ब्रह्मविद्या में पारंगत माने जाते थे।आत्मज्ञान का सच्चा साधक बालक नचिकेता यम के द्वारा प्रदत्त समस्त सांसारिक वैभव, दीर्घायु एवं शक्तियों से श्रेष्ठआत्मज्ञान को माना। नचिकेता ने कहा कि - *''हे मृत्योः आपके समान कोई इस ज्ञान को बोलने वाला नहीं मिल सकता और न ही आत्मज्ञान से बढ़कर कोई*

तु नामाहमस्मि सत्यकामो नाम त्वमसीति सोऽहं सत्यकामो जाबालोऽस्मि भो इति।
तं होवाच नैतदब्राह्मणो विवक्तुमर्हति'' – छा0उप0 – 4–4–4, 5

15 *''सा होवाच मैत्रेयी येनाहं नामृता स्यां किमहं तेन कुर्मां यदेव भगवान्वेद तदेव में ब्रूहीति।''*
– बृह0उप0 2–4–3

16 *''स होवाच याज्ञवल्क्यः ..... न वा अरे सर्वस्य कामाय सर्वं प्रियं भवति आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति। आत्मा वा अरे द्रश्टव्यः श्रोतव्यः मन्तव्यो निदिध्यासितव्य च मैत्रेयी आत्मनो वा अरे द निन, श्रवणेन मत्या विज्ञानेनेदं सर्वं विदितं''* – बृह0उप0– 2–4–5

17 *यथा सोम्यैकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृन्मयं विज्ञातं स्यात्*
वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्।। – छान्दोग्यो0 – 6–1–4

वरदान हो सकता है।''[18]नचिकेता वय में छोटा होते हुए भी सांसारिक प्रलोभनों से विचलित न होकर अपनी जिज्ञासा की पूर्ति के लिए अडिग रहता है। वह कहता है कि ये सभी भोग नाशवान हैं। ये आज हैं कल नहीं रहेंगे। अतः वह आत्मविषयक वरदान जो अत्यन्त गूढ़ एवं रहस्य से परिपूर्ण है उससे अन्य और कोई वर नचिकेता नहीं मांगता।[19]इस प्रकार ब्रह्म के साथ एकत्व प्राप्त करना उस काल में जीवन का मुख्य लक्ष्य था। आत्मसाक्षात्कार या आत्मज्ञान के द्वारा ही ब्रह्मज्ञान सम्भव था। वस्तुतः आत्मज्ञान एवं ब्रह्मज्ञान दोनों समान हैं। त्रिविध तापों से निवृत्ति एवं परम सत्य की प्राप्ति ही तत्कालीन शिक्षा का ध्येय था। आध्यात्मिकता के विकास के लिए आवश्यक योग्यताओं का वर्णन भी उपनिषदों में प्राप्त होता है।कठोपनिषद् में आत्मानुभूति के लिए सर्वोत्तम उपाय के रूप में अन्तः परावर्तन को स्वीकार किया गया है ? इसके लिए समस्त बाह्य विषयों से इन्द्रियों को खींचकर उन्हें अन्दर की ओर एकाग्र करने की बात कही गयी है। शरीर आदि से सम्बन्धित रथ के रूपक द्वारा इन्द्रियों को संयमित नियन्त्रित करने व आत्मा को रथी, शरीर को रथ, बुद्धि को सारथी और मन को लगाम के रूप में बताया गया है।[20] *''विवेकी व्यक्ति के अधीन इन्द्रियाँ उसी प्रकार रहती हैं जैसे कुशल सारथी के अधीन अच्छे घोड़े।''*[21] केवल बौद्धिक क्षमता के विकास के द्वारा आत्मज्ञान को नहीं प्राप्त किया जा सकता। इसकी ओर अग्रसर होने वाले व्यक्ति को समस्त बुराइयों को त्यागकर, सत्य एवं नैतिकता के आचरण को धारण करना पड़ता है। मुण्डकोपनिषद् में सत्य एवं तप से उस आत्मतत्त्व की प्राप्ति का विवरण है। यह आत्मा सर्वदा सत्य, तप सम्मक ज्ञान और ब्रह्मचर्य के द्वारा जाना जा सकता है। वह ज्योतिर्मय शुभ्र आत्मा शरीर के भीतर रहता है जिसे दोषहीन योगीजन देखते हैं।[22] सुख एवं शान्तिमय जीवन के लिए मानव का आत्मिक विकास परमावश्यक है। औपनिषद् शिक्षा प्रणाली

---

[18] *वक्ता चास्य त्वादृगन्यो न लभ्यो।*
नान्यो वरस्तुल्य एतस्य कि चत्।। – कठो0 1–1–22

[19] *योऽयं वरो गूढमनुप्रविश्टो,*
नान्यं तस्मान्नचिकेता वृणीते।। – कठो0 1–1–29

[20] *आत्मानं रथिनं विद्धि भारीरं रथमेव तु।*
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रजहमेव च।। – कठो0 1–3–3

[21] *यस्तु विज्ञान्वान् भवति युक्तेन मनसा सदा।*
तस्येन्द्रियाणि व यानि सद वा इव सारथेः। – कठो0 1–3–6

[22] *सत्येन लभ्यस्तपसा हयेश आत्मा, सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्।*
अन्तः भारीरे ज्योतिर्मयो हि भुभ्रो यं प यन्ति यतयः क्षीणदोशाः।। – मुण्डको0 3–1–5

इसी मुख्य उद्देश्य की प्रधानतया सिद्धि कराती है। अपौरूषेय वेद के अन्तिम भाग के रूप में ख्याति प्राप्त प्रमुख वैदिक उपनिषदें ज्ञान के आदिस्रोत एवं विद्या के अक्षय भण्डार हैं। इस विद्या की प्राप्ति कराने हेतु जिस प्रकार योग्य आचार्य की आवश्यकता होती है उसी प्रकार साधन चतुष्ट्यसम्पन्न जिज्ञासु ब्रह्मचारी ही सद्गुरू के द्वारा उपनिषद् तत्त्व के उपदेश का श्रवण कर, उस पर प्रगाढ़ मन करते हुए परब्रह्मसत्ता में प्रवेश कर तद्रूप हो जाता है। उपनिषद् का उपदेश है कि *''समस्त भासमान जगत ब्रह्म ही है।''*[२३] *''इस ब्रह्मज्ञान के अतिरिक्त मोक्षप्राप्ति के लिए कोई दूसरा मार्ग नहीं है।''*[२४] प्राचीन भारतीय शिक्षा का मुख्य उद्देश्य मोक्ष की प्राप्ति कराना ही था। *''विद्या वही है जो मुक्ति प्रदान करे।''*[२५] इस कथन के आधार पर अज्ञान से मुक्ति एवं ज्ञान की प्राप्ति तथा आध्यात्मिक पक्ष में त्रिविध तापों से एवं भवबन्धन से मुक्ति ही विद्या का मुख्य प्रयोजन था। समस्त सांसारिक शोक संताप से आत्मवेत्ता को मुक्ति मिल जाती है। *''आत्मज्ञानी शोक के पार हो जाता है।''*[२६] *''उस पर ब्रह्म परमेश्वर का साक्षात्कार कर लेने पर हृदय की समस्त ग्रन्थियाँ टूट जाती हैं। सारे संशय कट जाते हैं तथा समस्त कर्म क्षीण हो जाते हैं।''*[२७]शुभाशुभ कर्मों के परिणाम को प्राप्त कर उसके उपभोग का अकाट्य नियम समाप्त हो जाता है। जिससे आत्मज्ञानी को त्रिविध दुःख प्रभावित नहीं कर पाते। वह सर्वत्र निर्भय होकर आनन्द की अनुभूति करता है क्योंकि सत्य, ज्ञान एवं आनन्द स्वरूप परब्रह्म से एकाकार होकर वह स्वयं तद्रूप हो जाता है।आत्मानुभूति हेतु जिन अर्हताओं को उपनिषद्साहित्य में अनिवार्य बताया गया है उनमें सदाचार, तप, स्वाध्याय, निष्पाप कर्म, विनम्रता, विनयशीलता, गुरू में श्रद्धा, सेवाभाव आदि महत्त्वपूर्ण हैं। ब्रह्मचर्य व्रत का पालन कर तपःपूत साधक गुरू के समक्ष अपने को अधिकारी सिद्ध करता है तभी गुरू उसे उपदेश प्रदान करते हैं। प्रश्नोपनिषद् में वर्णन है कि जब सुकेशा, भारद्वाज आदि छः ऋषि ब्रह्मज्ञान के जिज्ञासु होकर महर्षि पिप्पलाद के पास गये तो ऋषि ने

---

[23] *'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'*

[24] *'नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय'* — भवेता0उप0 6–15

[25] *'सा विद्या या विमुक्तये'* — गीता

[26] *'तरति भाोकमात्मवित्'* — छान्दो0उप0 7–1–3

[27] *भिद्यते हृदयग्रन्थिः छिद्यन्ते सर्वसं ायाः।*
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृश्टे परावरे।। — मुण्डको0 2–2–8

उनसे कहा- *''तुम सब तपस्या, ब्रह्मचर्य और श्रद्धा से युक्त होकर एक वर्ष तक और निवास करो फिर इच्छानुसार प्रश्न करना यदि मुझे ज्ञात होगा तो तुम्हें सब बतला दूंगा।''*[२८]

निष्कर्ष-इस प्रकार समस्त उपनिषदें प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से उस ब्रह्मविद्या का प्रतिपादन करती हैं जिसे उपनिषदों में बत्तीस नाम दिये गये हैं। उपनिषदीय शिक्षा के द्वारा शिष्यों को वह परमज्ञान प्रदान किया जाता था जिसे जानकर कुछ भी जानना शेष नहीं बचता। जिसे प्राप्तकर साधक या शिष्य समस्त जीवन संघर्षो को पारकर आनन्द की अनुभूति करता है। ''अनन्तज्ञान स्वरूप परब्रह्म स्वयं में आनन्द एवं सुख की राशि है।''[२९]''इस ब्रह्मज्ञान को प्राप्त करने वाला व्यक्ति निर्भय होकर जीवनयापन करता है। वह समस्त दुःख, द्वन्द्व से परे हो जाता है।''[३०]

---

[28] *''तान्ह स ऋशिरूवाच भूय एव तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया संवत्सरं संवत्स्यथ यथा कामं प्र नं पृच्छत यदि विज्ञास्यामः सर्वं ह वो वक्ष्याम इति।''*

[29] *''आनन्दो ब्रह्ममेति व्यजानात्''* – तै0उ0 –3–6

[30] *''आनन्दं ब्रह्मणोविद्वान् न विभेति कुत चन''* – तै0उ0 2–9